भावार्थ चलता है। **दंसणमूलो धम्मो** की व्याख्या चलती है। सम्यग्दर्शन का मूल लक्षण तो प्रतीति है, परन्तु यहाँ प्रतीति सीधी ज्ञात नहीं होती, इसलिए उसे अनुभूति को मुख्य चिह्न गिनने में आया है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, यह आत्मा की अनुभव में

प्रतीति होना। शुद्ध चैतन्यस्वभाव के सन्मुख होकर अनुभव होकर स्वसंवेदन होकर उसमें प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन पहिचाना किस प्रकार जाए? ऐसा इसमें चलता है। सीधे तो पहिचाना नहीं जाता। वह प्रतीतिरूप है। उसके साथ स्वसंवेदन अनुभूति होती है। आनन्द के स्वाद का अनुभव होता है और जहाँ अनुभूति होती है, वहाँ सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हो, वहाँ अनुभूति होती है—ऐसा गिनकर सम्यग्दर्शन का अनुभूति मुख्य बाह्य चिह्न कहा गया है। उसका प्रतीति लक्षण है, वह यह लक्षण नहीं है। दर्शन की पर्याय को अनुभूति की पर्याय से पहिचानना, उस प्रतीति के लक्षण से यह लक्षण दूसरे गुण की पर्याय है, इसलिए इसे बाह्य लक्षण कहा गया है परन्तु यह है मुख्य। यहाँ से चला आता है न? है यह मुख्य चिह्न। बाह्य में भी। क्यों?

जहाँ आत्मा की अनुभूति-स्वसंवेदन होता है, वहाँ सम्यग्दर्शन होता ही है और जहाँ सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ अनुभूति होती ही है। इसके अतिरिक्त के दूसरे लक्षण को बाह्य चिह्न अकेला कहने में आया है।

प्रशम। अनन्तानुबन्धी के अभाव से समभाव-प्रशम दिखायी दे, वह बाह्य चिह्न है। क्यों? कि उस श्रद्धा का लक्षण प्रतीति है और यह है चारित्र की पर्याय। उपशम और यह उपशम सम्यग्दर्शन होवे, तब होता है और यह उपशम यों ही हो और सम्यग्दर्शन न हो। समझ में आया? इसलिए इसे बाह्य लक्षण गौणरूप से गिनकर लक्षण कहा गया है।

मुमुक्षु : यह तो बहुत कठिन लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन नहीं है। यह तो जैसा है, वैसा इसे समझना पड़ेगा या नहीं? सम्यग्दर्शन सूक्ष्म है और प्रकृति के परिणाम भी उपशम और क्षयोपशम हो, वे भी पुद्गल के परिणाम सूक्ष्म हैं। तब इसे जानना किस प्रकार? यहाँ तो यह प्रश्न है। समझ में आया? और न ज्ञात हो और प्रतीति-निर्धार न हो तो सब ऐसा ही गिने कि हमारे समकित नहीं है, समकित नहीं है, मिथ्यादृष्टि है। तो हो गया। समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहने में आया है कि मुख्य चिह्न तो इसका ज्ञान है-अनुभूति, उस ज्ञान की पर्याय द्वारा समकित को पहिचानना, यह व्यवहार हुआ। यह व्यवहार हुआ, क्योंकि दूसरे गुण की पर्याय द्वारा दूसरे गुण की पर्याय को पहिचानना, यह व्यवहार हुआ। परन्तु यह व्यवहार ऐसा होता है। सेठी!

मुमुक्षु : ....कहीं व्यवहार का....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अभूतार्थ होने पर भी... ऐई! .... व्यवहार तो तुम अभूतार्थ कहते हो। वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से अभूतार्थ है। आश्रय की अपेक्षा से (अभूतार्थ है) परन्तु यह पर्याय जो है, वह ज्ञान में ज्ञेय यह आया आत्मा, यह ख्याल में आया, वह बराबर आया है। उस ज्ञान द्वारा समकित को-प्रतीति को पहिचानना, इसका नाम यहाँ व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? दूसरे गुण की पर्याय द्वारा दूसरे गुण की पर्याय को पहिचानना, यही व्यवहार और उस व्यवहार को भी भगवान ने कहा है। ऐसा तीन-चार जगह लिखा है।

मुमुक्षु : व्यवहार अर्थात् सच्चा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा नहीं अर्थात् वह प्रतीति का लक्षण नहीं, सम्यग्दर्शन का लक्षण नहीं, इसलिए सच्चा नहीं परन्तु साथ में होता है, इसलिए उसे अविनाभाव गिनकर मुख्य बाह्य लक्षण कहा गया है। ऐसा है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन होने से आदरणीय...

पूज्य गुरुदेवश्री : आदरणीय की बात यहाँ कहाँ है? यहाँ तो पहिचानने के लिये व्यवहार कहा।

(समयसार) आठवीं गाथा में कहा है कि व्यवहार से यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसे व्यवहार से द्रव्य को बतलाया, परन्तु वह व्यवहार आदरणीय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? उस व्यवहार से बतलाया कि यह आत्मा, जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा, ऐसा व्यवहार कहा। तो व्यवहार तो अभूतार्थ है परन्तु उसके द्वारा वह जाना, तब उसे व्यवहार कहने में आया है। इसलिए अभूतार्थ होने पर भी, उसे छोड़कर जब जानता है, ज्ञायकमात्र आत्मा है, तब उस अभूतार्थ से भूतार्थ को जाना, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

मुमुक्षु : बहुत लम्बा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसमें दूसरे प्रकार से कुछ (होवे ऐसा नहीं है)। समझ में आया? इसके लिये तो कितने पृष्ठ भरे हैं।

मुमुक्षु : इसकी अपेक्षा तो आप सरल कहते हो, आनन्द होवे तो समकित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। ऐसा होगा ? आनन्द होवे तो समकित हो, परन्तु वह आनन्द की पर्याय भिन्न है, समकित की पर्याय भिन्न है। इसलिए आनन्द होवे तो समकित हो, वे दोनों एक हैं ? इसलिए उसे बराबर बताना चाहिए कि यह व्यवहार है। ऐई ! समझ में आया ? शशीभाई ! समझ में आया या नहीं ? यह सब ऐसा सूक्ष्म आया है। समयसार में तो सीधा था। यह वही प्रकार है। उसे स्वयं को भान होता है या नहीं ? और भान न हो तो सन्देह रहा करे कि यह तो समकिती नहीं है। इसलिए हो गया। वह तो सब मिथ्यात्व है। मुनि का व्यवहार ही सब मिथ्यात्व में होगा। सेठी ! यह सब समझना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं।

प्रशम लक्षण है, वह बाह्य है; मुख्य नहीं। मुख्य लक्षण अनुभूति है क्योंकि वह वहाँ होती ही है इसलिए (मुख्य है) और प्रशम हो, वहाँ समकित होता भी है और समकित न हो और प्रशम हो, इसलिए उस प्रशम को बाह्य मुख्य नहीं परन्तु गौण बाह्य चिह्न गिनने में आया है। लो ! इसे स्वयं को विश्वास होना चाहिए न ! किस प्रकार से विश्वास होगा ? समझ में आया ? ऐसे तो सम्यग्दर्शन के परिणाम तो सूक्ष्म केवलीगम्य हैं, ऐसा कहा। तब इसे गम्य किस प्रकार होंगे ? सेठी !

मुमुक्षु : मुख्य कारण क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्य कारण नहीं, मुख्य चिह्न। यहाँ शब्द बदलना नहीं चाहिए।

आत्मा वस्तुस्वभाव का पिण्ड चैतन्य प्रभु की सावधानी अन्तर में होकर जो प्रतीति हुई, वह प्रतीति वह सम्यग्दर्शन का वास्तविक लक्षण है और वह प्रतीति है, वह तो निर्विकल्प है। वह नहीं जानती स्वयं को, नहीं जानती पर को। तब अब उसे-प्रतीति को ज्ञान में जानना किस प्रकार ? समझ में आया ?

यह आत्मा राग की एकता में था, तब वह दुःख का वेदन था। मिथ्यात्व में। समझ में आया ? आनन्दस्वरूप होने पर भी राग का विकल्प है, सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प, वह मैं हूँ या यह अस्तित्व पूरा है, वह प्रतीति में नहीं आया, इसलिए उसकी प्रतीति में यह राग मैं हूँ, ऐसा प्रतीति में आया। उस मिथ्यात्वभाव में राग का वेदन, वह दुःख का है। अब

कहते हैं कि मिथ्यात्व जाकर (मिटकर) सम्यक्त्व हुआ, उसका लक्षण क्या? किस प्रकार पहिचानना?

तो कहते हैं कि जहाँ राग की एकता गयी, वहाँ स्वभाव की एकता हुई, तो रागरहित जो शुद्ध आनन्दस्वभाव है, उसमें एकता होने पर प्रतीति हुई, परन्तु प्रतीति सीधी ज्ञात नहीं होती, इसलिए आनन्द के वेदन से (जाना कि) यह आनन्द हुआ। वह पर्याय है प्रतीति से अलग, परन्तु यह आनन्द है-ऐसी प्रतीति हुई, उसे उसका ज्ञान व्यवहार से मुख्य बाह्य चिह्न से जानने में आता है। इतनी बात है। ऐ.. अमरचन्दभाई! ऐसा बहुत सूक्ष्म। समझ में आया? है?

ऊपर आया न? देखो न! उस ओर आया है। आठवें पृष्ठ पर। **उस चिह्न को ही सम्यक्त्व कहना, सो व्यवहार है।** आठवें पृष्ठ पर नीचे आया था। यह कुछ अलग होगा। यह पुराने की बात है। कहते हैं, देखो! **यह मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी के अभाव से सम्यक्त्व होता है, उसका चिह्न है; उस चिह्न को ही सम्यक्त्व कहना, सो व्यवहार है। उसकी परीक्षा सर्वज्ञ के आगम, अनुमान तथा स्वानुभव प्रत्यक्ष प्रमाण इन प्रमाणों से की जाती है।** तीन प्रकार लिये हैं। यह बात अपने आ गयी है।

इसी को निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहते हैं। स्वरूप का अनुभव होकर प्रतीति हुई, उसे निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहा जाता है। अब व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान है, वह बाह्य चिह्न है, ऐसा वापस कहा। यह निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान। समझ में आया? और इस ओर कहा, देखो! **वहाँ अपनी परीक्षा तो अपने स्वसंवेदन की प्रधानता से होती है और पर की परीक्षा तो पर के अंतरंग तथा पर के वचन व काय की क्रिया से होती है, यह व्यवहार है,...** देखो! ज्ञान से पर को जानना और ज्ञान से समकित को जानना, वह व्यवहार है। बहुत सरस स्पष्ट लिखा है। उसे स्वयं को विश्वास हो, उसका कोई उपाय है या नहीं? कहते हैं। समझ में आया?

परमार्थ सर्वज्ञ जानते हैं। क्योंकि पूर्ण पर्याय का लक्षण तो एकदम सर्वज्ञ जानते हैं। **अनेक लोग कहते हैं कि - सम्यक्त्व तो केवलीगम्य है, इसलिए अपने को सम्यक्त्व होने का निश्चय नहीं होता, इसलिए अपने को सम्यग्दृष्टि नहीं मान सकते। परन्तु इस प्रकार सर्वथा एकान्त से कहना तो मिथ्यादृष्टि है;...** ऐसा नहीं हो सकता।

उसके बाद है न ? इसलिए यहाँ अनुभूति से परीक्षा करना और दूसरे बाह्य लक्षण हैं, उनसे भी समकित को जानना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह तो मूल चीज़ है। **दंसणमूलो धम्मो** इससे यह बात चलती है।

मुमुक्षु : इसलिए अनुभूति तत्काल हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्काल हो जाती है परन्तु उस अनुभूति से समकित को जानना, यह भी व्यवहार हुआ। आहाहा ! दूसरी पर्याय से दूसरी पर्याय को जानना, वही व्यवहार, उसे स्व से जानना, वह निश्चय।

मुमुक्षु : सविकल्प अवस्था में ज्ञात होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सविकल्प नहीं। उस काल में अनुभूति है, उस समय में उसे आनन्द का स्वाद है, इसलिए समकित है – ऐसा विचार करने से ज्ञात होता है। बाकी तो प्रतीति में आया ही है न कि यह तो वस्तु आनन्द ही है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात। समझ में आया ? राग की एकता में जो दुःख था, आकुलता थी, मिथ्यात्व में (ऐसा था)। वह मिटकर स्वभाव सन्मुख होकर सम्यक्त्व होने से वह आकुलता एकता की तो गयी। तब उसके स्थान में अनाकुलता आनन्द का आश्रय आयेगा या नहीं अन्दर से ? मूल यही वास्तविक लक्षण है, अनुभव, यही वस्तु है। आहाहा ! समझ में आया ?

पश्चात् तो कहा, **तत्त्वार्थश्रद्धान तो बाह्य चिह्न है।** देखो ! **तथा तत्त्वार्थश्रद्धान तो बाह्य चिह्न है।** यह तत्त्वार्थश्रद्धान कौन ? भेदरूप। पहले तत्त्वार्थश्रद्धान था, वह निश्चय। समझ में आया ?

मुमुक्षु : निश्चय का चिह्न व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय का चिह्न व्यवहार अर्थात् क्या ? पर पर्याय, इस अपेक्षा से व्यवहार। पर्याय है, वह तो उसकी–ज्ञान की निश्चय (पर्याय है) परन्तु उस ज्ञान की पर्याय द्वारा प्रतीति को पहिचानना, वह व्यवहार है। समझ में आया ? उससे उसे जानना, वह तो निश्चय है। उससे प्रतीति को जानना, वह व्यवहार। गजब बात ! दास ! ऐसा मार्ग है, भाई ! धीरे से समझने योग्य बात है। समझ में आया ? कितना मर्म भरा है, देखो !

मुमुक्षु : ....सो निश्चय और प्रतीति को जानना व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान को, ज्ञान को जानना, वह तो निश्चय हुआ परन्तु ज्ञान की पर्याय द्वारा प्रतीति को जानना, वह व्यवहार हुआ। आनन्द को जानना, वह ज्ञान की पर्याय से ज्ञात होता है परन्तु आनन्द में जानने का भाव-स्वभाव कहाँ है ? स्व-पर प्रकाशक शक्ति एक ज्ञान में ही है। बाकी दूसरी सब शक्तियाँ-गुण हैं, वे तो अस्तिरूप से अस्तित्वरूप से रही हुई है। सत्तारूप से। परन्तु स्वयं और पर को जानना, वह उनका स्वभाव नहीं है। इसलिए यहाँ ज्ञान प्रधान से ज्ञान को ज्ञान से जानना, यह निश्चय हुआ, वेदन। ज्ञान से प्रतीति को जानना, वह यहाँ तो व्यवहार हुआ।

भाई कहते हैं, यह बाहर का व्यवहार नहीं। यह क्रिया, दया, दान का व्यवहार, वह नहीं। दया, दान के परिणाम, यह व्यवहार, वह नहीं। यह तो अन्दर पहिचानने की अपेक्षा का व्यवहार हुआ। और क्या कहा ? ऐसा कि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम जो हैं, उनसे पहिचानना, ऐसा रहा नहीं, वह वस्तु तो इसमें है ही नहीं। यह तो इसमें है। ज्ञान की अनुभूति और दर्शन की प्रतीति है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म आया। ऐ... प्रवीणभाई ! मार्ग तो देखो न...

बापू ! वस्तु है या नहीं ? और वस्तु के स्वरूप का जहाँ अन्दर भान होकर प्रतीति हुई, वह प्रतीति तो सीधी ज्ञात हो, ऐसी नहीं है क्योंकि प्रतीति में जानने का स्वभाव नहीं है, वह प्रतीति स्व को नहीं जानती, वह प्रतीति पर को नहीं जानती। कुछ भी जानने की बात है, वह ज्ञान द्वारा ही ज्ञात होती है। पंचाध्यायी में एक जगह लिया है। किसी भी गुण की व्याख्या करनी हो, (वह) ज्ञान द्वारा (की जाती है)। उसका कारण है ज्ञान। यह प्रतीति, यह आनन्द वह सब ज्ञान द्वारा ही ज्ञात होता है, कहा जाता है। दूसरे किस प्रकार से होगा ? पंचाध्यायी ने बहुत सरस बात ली है। पंचाध्यायी का ही यह सब थोड़ा लिया है। यह बाह्य चिह्न, यह पंचाध्यायी में बात है। पहले समझ में आये ऐसा है, ऐसा मस्तिष्क में रखना।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहा न ! समझ में आया ? इस व्यवहार के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं है, इसलिए यह कहते हैं, सर्वज्ञ ने भी व्यवहार का आश्रय कहा है। अर्थात् क्या ? एक गुण की पर्याय दूसरे को जाने, वह (इसका अर्थ है)।

मुमुक्षु : वह सविकल्पदशा में आवे या निर्विकल्प में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सविकल्प होवे तो भी ज्ञान से प्रतीति को जानता है, विकल्प से नहीं। निर्विकल्प में तो खबर भी नहीं, वह तो स्वयं वेदन में है। समझ में आया? परन्तु सविकल्पता आयी, तब भी जानने से ज्ञान की पर्याय से प्रतीति ज्ञात होती है। विकल्प से तो है ही नहीं। वह प्रश्न है ही नहीं यहाँ। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

तत्त्वार्थश्रद्धान बाह्य है। कहा न? रुचि, श्रद्धा और प्रतीति। प्रतीति भी ली है, देखो! यह अन्दर। वह प्रतीति बाह्य लक्षण है। उसकी जो मूल प्रतीति है, वह यहाँ नहीं। श्रद्धा, रुचि, प्रतीति। **जैसे सर्वज्ञ ने कहे हैं, तदनुसार ही अंगीकार करना और उनके आचरणरूप क्रिया...** शुभ विकल्प। **इसप्रकार श्रद्धानादिक होना, सो सम्यक्त्व का बाह्य चिह्न है।** यह पंचाध्यायी की शैली है। सीधा पंचाध्यायी पूरा पढ़ना कठिन पड़ता है। थोड़ा इसमें आया। इस प्रकार की शैली में (आया)। अब यहाँ तो अपने यहाँ तक आया है, देखो!

जीवादि पदार्थों में अस्तित्वभाव सो आस्तिक्यभाव है। यह बाह्य लक्षण है। प्रतीति अन्दर की है, वह तो निश्चय लक्षण है। यह पूरी वस्तु अखण्ड ऐसी है – ऐसी प्रतीति उसका निश्चय लक्षण है परन्तु यह आस्था होना कि 'यह है, जीव है, अजीव है, ज्ञानपर्याय है इत्यादि।' **जीवादि पदार्थों में अस्तित्वभाव, सो आस्तिक्यभाव है।** अस्तित्वभाव है, वह आस्तिक्यभाव है।

जीवादि पदार्थों का स्वरूप सर्वज्ञ के आगम से जानकर उनमें ऐसी बुद्धि हो कि जैसे सर्वज्ञ ने कहे वैसे ही यह हैं, अन्यथा नहीं हैं, वह आस्तिक्यभाव है। इस प्रकार यह सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न हैं। तत्त्वार्थश्रद्धान, प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था, ये सब बाह्य लक्षण हैं, क्योंकि पर्याय भिन्न है। यह पर्याय चारित्र की पर्याय ली है। समझ में आया? परन्तु प्रशम आदि में सम्यग्दर्शन होवे भी सही और न हो वहाँ ऐसे भाव होते हैं। अज्ञानी को भी, बाह्य; इसलिए उसे बाह्य लक्षण कहने में आया है और अनुभूति को अभ्यन्तर का मुख्य चिह्न कहने में आया है। समझ में आया?

यह कहीं बड़ी सभा का विषय नहीं है। बड़ी सभा अधिक हो। राजकोट में यह लगावे तो कहे, यह सब क्या है? वहाँ तो अमुक शैली चलती है। स्थूल में पकड़े नहीं, वहाँ और यह... एक तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय है और एक तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार है। एक

आस्था अन्दर प्रतीति, वह निश्चय है और नौ की प्रतीति का लक्षण, उसका बाह्य लक्षण कहा है। परन्तु यह क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : घड़ीक में ऐसा, घड़ीक में ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, घड़ीक में ऐसा नहीं। यह और ठीक कहते हैं। जिस अपेक्षा से पहले कहा था, उससे दूसरी अपेक्षा है। ऐसा इसका घड़ीक में ऐसा और घड़ीक में ऐसा। ख्याल आवे और देखता है न, भाई बोले तो यह भी बोले न। कहो, समझ में आया ? इसका पहले ख्याल तो करे कि यह इसकी विधि और यह इसकी पद्धति है। दूसरी पद्धति हो नहीं सकती।

और **सम्यक्त्व के आठ गुण हैं ह्न संवेग,...** मोक्ष की अभिलाष। क्योंकि स्वभाव की अभिलाषा, वह संवेग। **निर्वेद,...** बाह्य से हट जाना, राग आदि से हट जाना, वह निर्वेद। **निन्दा,...** ऐसा एक बाह्य भाव है। जो अन्दर में रागादि होते हैं... आहाहा! विषय-वासना, युद्ध का भाव धर्मी को भी होता है। उसकी उसे निन्दा आती है। ऐसा एक बाह्य भाव, समकिती की बाह्य लक्षण कहने में आता है। **गर्हा,...** गुरु के साथ में गर्हणा करना। ओहो! ऐसे निर्विकल्प आनन्द का भान होने पर भी यह एक वृत्ति उठती है, जो साधारण लोगों को कहने से लोगों को शंका पड़ जाती है। यह ? ऐसा एक भाव समकित की दशा में भी आता है। ऐई! उसे स्वयं निन्दा करना, वह निन्दा में जाता है और गुरु के पास निन्दा करना, वह गर्हा में जाता है। ऐसा एक भाव होता है।

मुमुक्षु : उसे गुण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण शब्द से यह पर्याय का ऐसा एक भाग है, उसे गुण (कहा)। गुण अर्थात् यह त्रिकाली गुण कहाँ है ? सच्चा गुण भी कहाँ है ? ऐसी एक स्थिति खड़ी होती है, ऐसा इसे उससे ज्ञात होता है, इसलिए उसे गुण कहा है। उससे बाह्य लक्षण ज्ञात होता है कि यह समकित है, इसलिए उसे गुण कहा। गुणते इति गुणः। पृथक् करना, पर से पृथक् करने के लिये गुण कहने में आता है। ऐसा है। गुण का अर्थ आता है या नहीं ? आता है, प्रवचनसार में आता है, तत्त्वार्थसार में आता है। तत्त्वार्थसार में लिया है। गुण क्यों ? कि वे दूसरों से पृथक् करते हैं, पृथक् करते हैं। आत्मा को ज्ञान द्वारा राग से, पर से पृथक् करते हैं, इसलिए उन्हें गुण कहने में आता है। समझ में आया ?

इस प्रकार यह भी बाह्य लक्षण कहे न? आठ गुण। उस प्रकार का पर से-मिथ्यात्वभाव से पृथक्‌पना बताते हैं, इसलिए उन्हें गुण कहा। गुण (अर्थात्) मूल (त्रिकाली) गुण नहीं तथा पर्याय अत्यन्त निर्मल है, ऐसा नहीं। परन्तु इस प्रकार का एक भाग होता है।

उपशम,... यह प्रशम में आ गया। **भक्ति,...** इसमें आगे लेंगे। संवेग में समाहित हो जाएगी। **वात्सल्य...** संवेग में समाहित हो जाएगा। **अनुकम्पा।** यह भी प्रशमभाव है न, उसके साथ अकषायभाव होता है, उसे यहाँ अनुकम्पा कहने में आता है। यह भी प्रशम में समाहित हो जाएगा। **यह सब प्रशमादि चार में ही आ जाते हैं।** यह आठों ही, हों! **संवेग में निर्वेद, वात्सल्य और भक्ति – ये आ गये तथा प्रशम में निंदा, गर्हा आ गई।** इसमें है, एक गाथा है। पंचाध्यायी की गाथा है।

अब यह प्रचलित-ख्याल में आवे, ऐसी बात है। ख्याल में आवे ऐसी वह थी परन्तु जरा सूक्ष्म थी। किसी समय वाँचन में आवे न, यह वाँचन कहीं हर समय होता है? समयसार का वाँचन तो बहुत बार बहुत प्रकार से (आया हो)। यह चलता हो तो पूर्व में चल गया हो, उसमें से बात, परन्तु उसके साथ मिलान आवे, इसलिए इसे जरा ठीक लगती है। यह तो किसी समय आवे, इसलिए समझने के लिये ध्यान रखना पड़ेगा।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे हैं,... अब सम्यग्दर्शन है तो प्रतीति पर्याय, उसके आठ प्रकार, उसके लक्षण के (कहते हैं)। चिह्न—**उन्हें लक्षण भी कहते हैं और गुण भी।** लो, अंग लक्षण और गुण। तीन प्रकार से कहे हैं। समकित के निःशंक आदि आठ (अंग) आते हैं न? **निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना।**

वहाँ शंका नाम संशय का भी है और भय का भी। शंका नाम संशय और भय, दोनों शंका के अर्थ में आते हैं। **वहाँ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालाणुद्रव्य, परमाणु इत्यादि तो सूक्ष्मवस्तु हैं तथा द्वीप, समुद्र, मेरुपर्वत आदि दूरवर्ती पदार्थ हैं...** नजदीक क्षेत्र में नहीं हैं, ऐसा। परमाणु भी जरा है नजदीक में परन्तु दूर है न? अपने को ज्ञात न हो ऐसा। **तथा तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि अन्तरित पदार्थ हैं; वे सर्वज्ञ के आगम में जैसे कहे हैं, वैसे हैं या नहीं हैं?** ऐसा संशय (होवे), उसे शंका कहते हैं

और उसमें भय होना कि ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। शंका को भय भी कहते हैं। **अथवा सर्वज्ञदेव ने वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक कहा है सो सत्य है या असत्य? – ऐसे सन्देह को शंका कहते हैं।**

मुमुक्षु : भगवान ने कहा, वह तो सत्य ही होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य होता है, परन्तु वह सत्य किस प्रकार से है, यह इसके ख्याल में आना चाहिए न! गहरे-गहरे संशय रहे और ऐसा कहे (कि) सर्वज्ञ भगवान ने कहा वह सत्य। समझ में आया? भगवान ज्ञान में एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक पृथक्-पृथक् अनन्त के अनन्त भेद को पृथक्‌रूप से जाना है, ऐसा ही पर्याय का उनका स्वभाव है। उन्होंने जाना वह सत्य है, ऐसा अन्दर में नि:सन्देहरूप से जँचना। और सन्देह रहना, वह संसार है। समझ में आया?

जिसके यह न हो उसे नि:शंकित अंग कहते हैं... यह शंका न हो, उसे नि:शंक कहा जाता है। नि:शंकता, स्वरूप की नि:शंकता। यह नि:शंक आता है न? नियमसार में (आता है) ३८, ३८ न? ५वीं गाथा—**आप्त अर्थात् शंकारहित। शंका अर्थात् सकल मोह राग-द्वेषादिक (दोषों)।** सकल राग-द्वेष-मोह सब दोष। समझ में आया? और उस दोष को शंका कहा और शंकारहित, वह आप्त पुरुष होता है। आप्त की श्रद्धा करनेवाला भी ऐसी शंकारहित होता है। समझ में आया? यह ५वीं (गाथा) है, हों!

सन्देह को शंका कहते हैं। जिसके यह न हो, उसे नि:शंकित अंग कहते हैं तथा यह जो शंका होती है, सो मिथ्यात्वकर्म के उदय से (उदय में युक्त होने से) होती है;... सन्देह, स्वभाव से विरुद्ध भाव है, वह अज्ञान के कारण होता है। मिथ्यात्व कर्म का निमित्त है, ऐसा कहते हैं। **पर में आत्मबुद्धि होना उसका कार्य है।** शंका का कार्य क्या है? पर में आत्मबुद्धि होना। सत् की श्रद्धा में शंका अर्थात् असत् की श्रद्धा है। वह पर में आत्मबुद्धि है, उसे शंका कहा जाता है।

जो पर में आत्मबुद्धि है, सो पर्यायबुद्धि है... यह रागादि में। सर्वज्ञस्वभाव से कहा हुआ जो आत्मा, उसकी जिसे शंका है, वह शंकावाला... क्या कहा? उसे पर में आत्मबुद्धि है। स्व में यदि स्वबुद्धि हो तो उसे शंका नहीं हो सकती। सब राजकोट के आ गये? पुस्तकें आ गयी हैं। कल? आ गये? क्या कहा?

शंका, वह मिथ्यात्वकर्म के उदय से। और उसमें आत्मबुद्धि होना, वह कार्य है। शंका में पर में आत्मबुद्धि (होती है)। स्व की आत्मबुद्धि हो तो निःशंकरूप से वहाँ होती है। शंका में कुछ भी विकल्प आदि में भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि विकल्प इसका है। समझ में आया? ऐसे सर्वज्ञ ने कही हुई बात में इसे गहरे-गहरे शंका अर्थात् पर को अपना मानने का भाव (रहना), वह शंका का कार्य है। समझ में आया?

और उसका अर्थ **जो पर में आत्मबुद्धि है, सो पर्यायबुद्धि है...** किसमें? पर में। स्ववस्तु अखण्ड आत्मद्रव्य की जो प्रतीति, वह तो निःशंक हुआ। वह तो निःशंक पर्याय हुई और यह शंका—पर में अपनी बुद्धि, उस पर्यायबुद्धिवाले को वह पर्याय होती है। राग आदि मैं, शरीर आदि मैं। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, ऐसा सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व, उसमें जिसे शंका है, उसे कहते हैं कि परबुद्धि-पर में ही अपनापन मानने का भाव है और उसका नाम ही पर्यायबुद्धि कहने में आती है। गजब बात की है। ऐई! यह हो रही है, पुस्तकें मिलती नहीं। नहीं तो अभी बहुत खप जाए। पढ़ते हों तब बहुत खपे। यह हिम्मतभाई ने तो तैयार की नहीं। आवे तब होवे न।

यहाँ कहते हैं, यहाँ वापस क्या डालना है? भय डालना है। शंका में से भय निकालना है। शंका का नाम भय भी है। ऐसा कैसे है? कहते हैं कि शंकावाले को पर में अपनी बुद्धि है, उसका नाम शंका और पर में अपनी बुद्धि है, वह पर्यायबुद्धिवाले को होती है। पर्यायबुद्धि अर्थात् राग और शरीर मेरा, उसे भय होता है। यह भय की व्याख्या है। समझ में आया? अरे! गजब बातें, भाई! ...सुनना तो चाहिए या नहीं? बहुत वर्ष हो गये न! (संवत्) २०१८ के वर्ष में कार्तिक में पूरा हुआ था। साढ़े सात वर्ष हुए।

कहते हैं, शंका अर्थात् सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्वों की शंका अर्थात् उसे स्व का स्व और पर की बुद्धि की भिन्नता का भान नहीं है, इससे पर को अपना मानता है, उसे यहाँ शंका (कहते हैं)। इस शंका का वह कार्य है और वह शंका पर्यायबुद्धि अर्थात् शरीर आदि मेरा, राग मेरा, उसे होती है और इसलिए शरीर और राग मेरा, उसे भय हुए बिना नहीं रहता। यह जाएगा तो? समझ में आया?

और पर्यायबुद्धि भय भी उत्पन्न करती है। देखो! ऐसा अस्तित्व का निःशंकापना नहीं, इसलिए ऐसी शंका हुई। शंका में तो परबुद्धि हुई। परबुद्धि, वह पर्यायबुद्धि। पर्याय

अर्थात् शरीर मेरा, ऐसी बुद्धि उस शंकावाले को होती है। निःशंकवाले को तो पूरा आत्मा अखण्ड आनन्द हूँ, वह निःशंकता है। समझ में आया? शंका में अखण्ड द्रव्यस्वभाव है, वह प्रतीति में नहीं है। निःशंकता में वह नहीं अर्थात् वह शंका में आया है। स्वद्रव्य के परिपूर्ण की प्रतीतिरहित परवस्तु मेरी, ऐसी शंका के भाव में आया है। उसका कार्य—शंका का कार्य यह है। और वह पर्यायबुद्धिवाले को (होती है)। पर्यायबुद्धिवाले को भय हुए बिना नहीं रहता। मेरा शरीर जाएगा तो? ऐसा होगा तो? समझ में आया? **पर्यायबुद्धि भय भी उत्पन्न करती है।**

शंका भय को भी कहते हैं,... बहुत अच्छी व्याख्या की। समझ में आया? ऐसी वस्तु भगवान ने कही हुई, आत्मा आदि सब, लो न! निःशंक वस्तु स्वयं परमानन्द और अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा भान होवे तो निःशंक है परन्तु ऐसी निःशंकता नहीं, वहाँ शंका है अर्थात् स्व को ही अपना मानना नहीं, परन्तु पर को अपना मानना, ऐसी शंका है। उस शंका का कार्य पर को (अपना) मानना, यह भाव है और पर को अपना माने, वहाँ पर्यायबुद्धि होती है। मैं हूँ, यह बुद्धि नहीं और शरीर मैं हूँ, यह बुद्धि है और शरीर मैं हूँ—ऐसी बुद्धिवाले को भय उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। आहाहा!

उसके सात भेद हैं... लो, अब उसके सात भेद किये। शंका को भय किस प्रकार से है, उसकी व्याख्या करके अब उसके सात भेद करते हैं।

मुमुक्षु : यह भय है, ऐसा तो ख्याल...

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करके किया कि भय इस प्रकार से है। भय क्यों है शंका के अर्थ में? शंका के स्थान में भय भी कैसे कहना? ऐसे जिसे आत्मबुद्धि नहीं, उसे पर्यायबुद्धि है और शंका का कार्य ही यह कि पर को अपना मानना और स्व को अपना मानना नहीं। समझ में आया? समझ में आये ऐसी भाषा है, हों! समझ में आता है न गुजराती? आहाहा!

यह सात भय हैं। **इस लोक का भय,...** जहाँ पर्यायबुद्धि है, शरीरबुद्धि है, अजीवबुद्धि है; जीवबुद्धि नहीं। समझ में आया? अपना भगवान आत्मा अखण्डानन्द परिपूर्ण की अस्ति है, उसकी तो बुद्धि नहीं, इसलिए परबुद्धि हुई। परबुद्धि हुई, उसमें इस लोक का भय, परलोक का भय, मरण का भय, अरक्षा का भय, अगुप्ति का भय, वेदना

का भय, अकस्मात् का भय। **जिसके यह भय हों, उसे मिथ्यात्व कर्म का उदय समझना चाहिए;...** क्योंकि यह चीज़ इसकी नहीं और इसकी मानी है और तब इसे भय उत्पन्न होता है। समझ में आया ? भय होवे तो जानता है, तब मिथ्यात्व होता है। **सम्यग्दृष्टि होने पर यह नहीं होते।** सम्यग्दृष्टि द्रव्यस्वभाव का अस्तित्वपने का भान होने से परवस्तु मेरी है, ऐसा नहीं रहता; इसलिए उसे भय नहीं रहता।

***प्रश्न* – भयप्रकृति का उदय तो आठवें गुणस्थान तक है;...** महाराज! सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ भय नहीं है। (ऐसा आपने) सीधा बैठा दिया। भय अस्थिरता तो आठवें गुणस्थान तक होती है। हमने शास्त्र पढ़े हैं। शास्त्र में ऐसा है। आप कहते हो, चौथे में भय नहीं है, सम्यग्दृष्टि को भय नहीं है। हमने शास्त्र में पढ़ा है कि आठवें तक भय है। कहो, समझ में आया ? **उसके निमित्त से सम्यग्दृष्टि को भय होता ही है, फिर भय का अभाव कैसा ?** आप भय का अभाव कैसे कहते हो ?

इसका ***समाधानह्व*– कि यद्यपि सम्यग्दृष्टि के चारित्रमोह के भेदरूप...** चारित्रमोह के भेदरूप **भयप्रकृति के उदय से भय होता है,...** थोड़ी अस्थिरता होती है। **तथापि उसे निर्भय ही कहते हैं; क्योंकि उसके कर्म के उदय का स्वामित्व नहीं है...** वह भय का विकल्प उठा, उसका स्वामीपना नहीं है। वह उसमें नहीं है। उसमें वह मानता नहीं, इसलिए उसे भय नहीं है। समझ में आया ? जयचन्दभाई !

उसे भयभाव होता है, अभी प्रकृति है न, इसलिए (भयभाव होता है) उसके निमित्त में जुड़ता है परन्तु उस भयभाव का स्वामी नहीं, इसलिए अपना नहीं है, इतना। और स्वामी शुद्ध चैतन्य का है। उसका (प्रकृति-भय का) स्वामी नहीं, इसलिए उसे भय है— ऐसा कहने में नहीं आता। आहाहा ! जयन्तीभाई ! गजब बातें हैं, भाई ! आहाहा !

कर्म के उदय का स्वामित्व नहीं है... अर्थात् ? उदय और राग, दोनों से जहाँ स्वभाव भिन्न है, ऐसा जहाँ अनुभव में, प्रतीति में आया है, अब उसे भय आया परन्तु अन्दर वह मेरा है, ऐसा तो होता नहीं; इसलिए उसे भय नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : भय होने पर भी भय नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे तो पूरा लोकालोक है। केवलज्ञान में लोकालोक आ गया ? यहाँ आ जाता है ?

मुमुक्षु : लोकालोक नहीं, यह तो भय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वही है। वह सब लोकालोक में गया। समझ में आया? भय का ज्ञान, वह अपना है। भय का भाव अपना नहीं। भय का भाव अपना होवे तो वहाँ सम्यग्दर्शन रहता नहीं क्योंकि वस्तु में भय नहीं। भय तो विकृतभाव है, मैल है, दोष है। उस दोषरहित चीज़ आत्मा है। ऐसे आत्मा की जिसे प्रतीति और भान हुआ, वह भय को अपने में नहीं मानता, इसलिए वह अभय है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आहाहा! सर्प निकले और दूसरे भागें, इसी प्रकार यह भी जरा आगे भागे। काला नाग निकले तो।

मुमुक्षु : चुहिया सबसे पहले भागे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल में आ जाए तो भागे। उसका अर्थ ऐसा। उसमें-ख्याल में न हो। ऐसा अपने इसका अर्थ लेना न! देखो न! रामजीभाई बैठे थे न? रामजी पानाचन्द न? ऐसे नीचे बड़ा सर्प निकला था। बही ऐसे थी। ऐसे निकला तो भी पता नहीं। फिर कहे, बड़ा सर्प है। कहाँ से निकला? यहाँ रास्ता नहीं। तुम्हारे यहाँ से-बीच में से निकला। तब उन्हें खबर पड़ी।

इसी प्रकार ज्ञानी को भय का भाव, उसे है—ऐसा नहीं कहा जाता क्योंकि भय के भाव से पृथक्पना जिसका ज्ञान है, उसका वह है, उसमें है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो यह भय का ज्ञान और ज्ञानवाला जो आत्मा, उसके अस्तित्व में तो है, ऐसी नि:शंकता ही है। समझ में आया?

और परद्रव्य के कारण अपने द्रव्यस्वभाव का नाश नहीं मानता। क्या कहते हैं? परद्रव्य से अपना द्रव्यस्वभाव (नष्ट नहीं होता)। कोई सर्प निकला, कोई दीवार गिरी, बाघ आया परन्तु उससे आत्मद्रव्य का नाश होता है-ऐसा मानता है? निर्भय है, इसकी दो बातें की। एक तो भय का भाव होने पर भी उसका स्वामी नहीं है अर्थात् पृथक् वर्तता है, इसलिए निर्भय है और परद्रव्य से मेरा नाश होता है, ऐसा ज्ञानी को नहीं है, इसलिए वह निर्भय है। आहाहा! समझ में आया? पण्डित जयचन्दजी ने बहुत स्पष्ट किया है।

परद्रव्य के कारण अपने द्रव्यस्वभाव का... द्रव्यत्वभाव, द्रव्य का भाव जो आनन्द, ज्ञानभाव, अविनाशी भाव, उसकी जो पर्याय उसका भी नाश पर से तो मानता नहीं, इसलिए भी ज्ञानी निर्भय है। आहाहा! **पर्याय का स्वभाव विनाशीक मानता है, इसलिए भय होने पर भी उसे निर्भय ही कहते हैं।** शरीर का नाशवान स्वभाव जानता है। समझ में आया? और भय आया वह भी मेरा नहीं है, ऐसा जानता है; इसलिए उससे भय नहीं है। आहाहा!

भय होने पर उसका उपचार भागना (पलायन) इत्यादि करता है;... देखो! यह नहीं कहा? पहले भागे। ख्याल आ गया। दूसरे को ख्याल नहीं आया। दौड़ता है। ऐई! ख्याल में पहले आ गया। भाव है, वह मेरा नहीं और पर से द्रव्य का नाश होता है, द्रव्य-गुण-पर्याय का नाश होता है, (ऐसा नहीं मानता)। विनाशी पर्याय है। भय का ज्ञान है, उस ज्ञान का पर के कारण नाश होता है, ऐसा ज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया? **भागना (पलायन) इत्यादि करता है;...** इत्यादि अर्थात्? जरा शोर भी करे। ऐ...! ....वह दूसरा मिथ्यादृष्टि हो, वह शान्ति से बैठे भी सही। अन्दर वस्तु अखण्डानन्द प्रभु है, उसका अज्ञानी को प्रतीति और भान नहीं है तथा ज्ञानी को भान है कि मैं तो अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य हूँ। मेरे द्रव्य-गुण का तो नाश नहीं, परन्तु भय के भाव से और संयोग से मेरी निर्मल पर्याय का भी नाश नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह वर्तमान का कहते हैं। भागना इत्यादि की व्याख्या। भागना, बोले, शोर मचाये। ऐ... यह तो बोलने की क्रिया होती है, उसका स्वामी वह कहाँ है? दुनिया को भारी कठिन पड़े। गम्भीर भाव है। कठिन का अर्थ वस्तु का स्वभाव गम्भीर है। ज्ञानी वर्तमान में भागना इत्यादि करे, **वहाँ वर्तमान की पीड़ा सहन न होने से वह इलाज (उपचार) करता है,...** बिस्तर में गिर जाए, कहीं ऐसा हो जाए।

मुमुक्षु : भाग जाना वह इलाज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाग जाना इत्यादि होता है, इतना। उसका इलाज बाद में कहेंगे। यह तो भाग जाना इत्यादि करता है और वर्तमान पीड़ा सहन नहीं होती, इसलिए भागता है, छिप जाता है। लोहे के उसमें घुस जाता है।

मुमुक्षु : यह उसका इलाज है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इलाज अर्थात् ऐसा हो जाता है – यह कहते हैं।

मुमुक्षु : इलाज तो आत्मा में रहने का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा में ही है। पर में है ही कहाँ? बाहर की क्रिया में वह है ही नहीं परन्तु लोग भागते हैं या नहीं? देखो! उसने किया है या नहीं? लोहे की ताक डलाये। सर्प घुसे नहीं ऐसा किया, ऐसा किया। सिंह आवे नहीं ऐसा किया। लोहे के पक्के सरिया डाले। लोहे के सरिया। ऐसा होने पर भी, ऐसा दिखने पर भी उसका वह स्वामी नहीं है। उसका पृथक्पना उसे वर्तता है। आहाहा! चन्दुभाई! दवा करने आए एकदम।

मुमुक्षु : ....शोर मचाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोले वह दूसरा। शोर जड़ का। भय आया वह दूसरा, फिर और बोलने की बात कहाँ रही? आहाहा! भगवान आत्मा परिपूर्ण स्वभाव से अस्तिरूप जहाँ प्रतीति में, अनुभव में, भान में आया, यहाँ कहते हैं कि वह भागने की क्रिया और भय, दोनों उसमें कहाँ थे? समझ में आया? गजब! **इलाज (उपचार) करता है, वह निर्बलता का दोष है।** अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र का दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष है, कमजोरी का दोष है; वह श्रद्धा का दोष नहीं है। उसकी अपनी निःशंकता स्वभाव के प्रति वर्ते, उसमें कहीं शंका की गन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

श्रेणिक राजा, लो। कैदखाने में डाला। अब वह (उनका पुत्र) आया था छुड़ाने को। उसकी माँ ने कहा अरे बेटा! जब तू जन्मा था, तब तुझे कचरे में डाल दिया था। हं। क्योंकि तेरी क्रूरदृष्टि मैंने देखी थी जन्मते समय और गर्भ में था, तब तेरे पिता का माँस माँगा था। वह नहीं आया, इसलिए मैंने तुझे कचरे में डाल दिया था। उकर्डा समझे? कूड़े का ढ़ेर, कचरा। वहाँ डाल दिया था। मुर्गा था, उसने तुझे चोंच मारी, कोमल हो इसलिए, उसकी पीड़ा से तू रोता था। मेरे पास तेरे पिता आये—बाल जीव कहाँ है? जन्मा तब उसकी दृष्टि मैंने क्रूर देखी। अरे! पहले गर्भ का ऐसा नहीं डाला जाता। तुमने यह ऐसा क्या किया? समझ में आया?

श्रेणिक राजा कूड़े के ढ़ेर पर गये, (तुझे) ऐसे उठाया। भाई ! तेरे लिये ऐसा (किया था) हं.... ! अरे ! मेरे पिता ऐसे थे ? वह हाथ में खंजर लेकर जेल में डाला था न ? तोड़ने जाता है, वहाँ उन्हें (श्रेणिक को) ऐसा लगता है कि इतनाा किया और उसमें खंजर लेकर आता है तो क्या करेगा ? हीरा चूस लिया या सिर फोड़ा, चाहे जो हो, परन्तु अन्दर में भय नहीं है, हों ! क्षायिक समकित है। पण्डितजी ! अस्थिरता के भाग को जहाँ स्वभाव में खतौनी नहीं करता और बाह्य की क्रिया को जहाँ अन्तर में खतौनी नहीं करता, उसे भय-फय है कहाँ ? किसने कहा ? निर्भय है। ऐसा होता है न ? होता है, वह जड़ की क्रिया में। जिसे भय का भाव आया, वह तो चारित्रदोष में जाता है। इलाज करे अर्थात् ऐसे मरने का भाव किया। हीरा चूसा न ? श्रेणिक राजा। सिर पछाड़ा। यह तो क्षायिक समकित है। उस समय जरा ऐसा कुछ दबाव हो गया। श्रद्धा में ऐसा है कुछ ? वह वस्तु ही जहाँ भिन्न पड़कर भान हुआ, उस भिन्न का भाव और उसकी क्रिया बाहर की अजीव में रह जाती है, अन्दर में विभाव में रह जाती है, उसे स्वभाव में नहीं आती। आहाहा ! समझ में आया ?

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि के संदेह तथा भयरहित होने से नि:शंकित अंग होता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि भयरहित और शंकारहित (होता है), उसे नि:शंकित (अंग होता है)। यह नि:शंक अंग की व्याख्या। सम्यग्दर्शन के नि:शंक किरण के अंग की यह व्याख्या है। कहो, समझ में आया ? बहुत स्पष्ट किया है। ओहो ! वस्तु तो ऐसी है। आहाहा ! यह नि:शंक की व्याख्या हुई। अब कांक्षा की व्याख्या करेंगे। कांक्षा किसे कहना ? लो ! समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)